बी० ए० द्वितीय वर्ष

हिंदी प्रथम प्रश्न-पत्र- मध्यकालीन हिंदीकाव्य

विषय:- निर्धारित काव्य की व्याख्या

व्याख्याता: डॉ. राजीव कुमार वर्मा
सहायक आचार्य (हिंदी विभाग)
नेहरू ग्राम भारती (डी.यू.) प्रयागराज

व्याख्या

झलकै अति सुन्दर आनन गौर, छके दृग राजत काननि छ्वै।
हँसि बोलनि मैं छबि फूलन की बरषा, उर ऊपर जाति है है।
लट लोल कपोल कलोल करै, कल कंठ बनी जलजावलि है।
अँग-अंग तरंग उठै दुति की, परिहै मानौ रूप अबै धर च्वै।। 1।।

शब्दार्थ—आनन=मुख। गौर=गोरा। छके=मस्त। राजत= शोभायमान। छ्वै= छूकर। कलोल=खेलना। कलकण्ठ=सुन्दर गला। जलजावलि= मोतियों की माला। दुति=कान्ति। धर=धरती।

प्रसंग—प्रस्तुत सवैया में कवि ने नायिका का रूप-वर्णन एवं अंग-दीप्ति का वर्णन किया है।

व्याख्या—नायिका का अत्यधिक सुन्दर गोरा मुख कान्ति के कारण झिलझिला रहा है। उसके मदमस्त, कानों को छूने वाले विशाल नेत्र सुशोभित हो रहे हैं। उसे हँसकर बोलने में देखने वाले को हृदय पर सौन्दर्य-सुमनों की वर्षा होती है। उसकी सुन्दर लट कपोल पर खेल रही है। उसके कण्ठ में मोतियों की दो लड़ी माला सुशोभित हो रही है। उसके प्रत्येक अंग से कान्ति की लहरें उठ रही हैं। कवि उत्प्रेक्षा करता है कि मानो उसका सौन्दर्य अभी-अभी धरती पर चू पड़ेगा। वाह! कितनी सुन्दर है वह।

विशेष— (i) रूप का उल्लेख है और सौन्दर्य का अनूठा वर्णन हुआ है।
(ii) अनुप्रास, रूपक और यमक अलंकार की छटा दर्शनीय है।
(iii) सवैया शैली का प्रयोग है।
(iv) भाषा ब्रज है।
(v) (क) प्रिय के अनुपम रूप-सौन्दर्य से प्रभावित होकर मीर तक़ी 'मीर' भी कहते हैं—

नाज़ुकी उसके लब की क्या कहिए,
पंखुड़ी इक गुलाब की-सी है !
'मीर' उन नीम बाज़ आँखों में,
सारी मस्ती शराब की-सी है।

(ख) रूप की एक झलक भी अन्तस् में अपना कैसा अमिट प्रभाव छोड़ जाती है, इसकी अभिव्यक्ति 'अकबर इलाहाबादी' ने कुछ यों की है—

इक झलक उनकी देख ली थी कभी,
वो असर दिल से आज तक न गया।

रावरे रूप की रीति अनूप, नयो नयो लागत ज्यौं-ज्यौं निहारियै।
त्यौं इन आँखिन बानि अनोखी, अघाति कहूँ नहिं आनि तिहारियै।
एक ही जीव हुतो सु तौ वार्‌यो, सुजान, सँकोच औ सोच सहारियै।
रोकी रहै न, दहै घनआनन्द बावरी रीझि के हाथन हारियै।। 2।।

शब्दार्थ—रावरे- आप के। अनूप-अद्‌भुत। आनि-शपथ। दहै-जलाती है। रीझि-सुन्दरता।

प्रसंग—प्रस्तुत सवैया में कवि ने प्रिय सुजान के आबदार अनुपम रूप का वर्णन किया है।

व्याख्या—कविवर घनानन्द कहते हैं हे प्रिय! तुम सुन्दरता की खान हो। तुम्हारे रूप की रीति अनुपम है। तुम्हारे सलोने रूप को ज्यों-ज्यों देखा जाता है, त्यों-त्यों वह नया-नया लगता है। तुम्हारे रूप की ऐसी रीति है और मेरे नेत्र की कुछ ऐसी आदत भी है। सच, तुम्हारी कसम खाकर कहता हूँ— इन नेत्रों को कुछ ऐसी आदत पड़ गयी है कि ये अन्य किसी को देखकर अघाते ही नहीं। दोनों ओर विचित्रता है। ये तुम्हारी ही रूपमाधुरी से तृप्त होते हैं। मेरे पास एक जो प्राण था, उसे भी मैंने तुम्हारे ही ऊपर निछावर कर दिया। हे प्रिय सुजान! अब मैं लोक-संकोच में पड़ गया हूँ और अपनी चिन्ता हो रही है कि क्या करूँ-क्या न करूँ! अब तुम मुझ पर कृपा करो और मेरे इस लोक-संकोच एवं चिन्ता को सहारा प्रदान करो, मैं बेबस हूँ, तुम मुझे सँभालो। सुन्दरता के हाथों मैं हार गया हूँ।

हे सुजान! मैं तुम पर रीझ गया हूँ। तुम्हारी सुन्दरता के हाथों बिक चुका हूँ। रीझ ने मुझे एकदम बावला कर दिया है। हाय! क्या करूँ, यह रीझ रोकने से नहीं रुकती। यह रीझ मुझे भस्म कर दे रही है। मैं इससे हार गया हूँ। अब मेरी इस बेबसी को तुम्हीं सोचो, बोलो क्या करूँ ?!

विशेष—(i) सौन्दर्य का उत्कृष्ट वर्णन है।
(ii) मोह को स्पष्ट किया गया है।
(iii) अनुप्रास अलंकार दर्शनीय है।
(iv) ब्रज भाषा का प्रयोग है।
(v) सौन्दर्य की नित्य-नवलता के बारे में महाकवि माघ भी कहते हैं—
क्षणे-क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः।
(vi) चित्ताकर्षक और नित्य-नवल सौन्दर्य के बारे में आचार्य मतिराम की ये पंक्तियाँ भी भावनीय हैं—
कुन्दनु को रँगु फीको लगै, झलकै अति अंगन चारु गुराई।
आँखिन में अलसानि, चितौनि में मंजु विलासन की सरसाई।
को बिनु मोल बिकात नहीं, मतिराम लहै मुसुकानि मिठाई।
ज्यों-ज्यों निहारिए नेरे ह्वै नैननि, त्यों-त्यों खरी निकसै-सी निकाई।

✓ पहिले घन-आनँद सींचि सुजान कही बतियाँ अति प्यार पगी।
अब लाय वियोग की लाय बलाय बढ़ाय, बिसास दगानि दगी।
अँखियाँ दुखियानि कुबानि परी, न कहूँ लगैं, कौन घरी सु लगी।
मति दौरि थकी, न लहै ठिक ठौर, अमोही के मोह-मिठास ठगी।। 3।।

शब्दार्थ—लाय-लगाकर। **लाय**-आग। **बलाय**-विपत्ति। **बिसास**-विश्वासघात। **दगा**-धोखा। **दगी**-जलाई। **कुबानि**-कुटेव। **ठौर**-ठिकाना।

प्रसंग—प्रस्तुत छन्द में निष्ठुर प्रिय की निर्दयता का वर्णन किया गया है। प्रेमी विवशता में पड़ा अपने प्रिय के विश्वासघात से दुखी है।

व्याख्या—कवि अपने प्रिय सुजान के रुक्ष एवं उपेक्षापूर्ण व्यवहार से दुखी है। वे कहते हैं सुजान ने पहले तो मुझे घने प्रेम-रस से सींचा और मुझ से अत्यन्त प्यार भरी बातें कीं, किन्तु अब उन्होंने मुझमें वियोग की आग लगा दी। इससे मुझे बड़ा कष्ट है। बेकार की बला मेरे सिर पड़ गयी। उन्होंने मेरे साथ विश्वासघात किया। मुझे दगा देकर जलाया। मेरी दुखिया अखियाँ को बड़ी बुरी आदत पड़ गयी है। वे अन्यत्र कहीं न लगकर केवल सुजान को ही खोजती हैं। न जाने किस घड़ी सुजान से इनकी लगा-लगी से हुई थी कि ये सिवा उनके अन्यत्र नहीं लगतीं। मेरी बुद्धि दौड़कर हार गयी। उसे कोई ठीक ठौर-ठिकाना नहीं मिल रहा है। जब तक ठिकाना नहीं मिलता तब तक चैन कहाँ? क्या बताऊँ, मैं तो निर्मोही सुजान की मिठास द्वारा ठग लिया गया हूँ। न मैं सुजान पर मोहित होता, न उनके रूप-माधुर्य द्वारा ठगा जाता। अब तो ठगा ही गया, राम जाने क्या होगा !

विशेष—(i) यहाँ विश्वासघात के कारण प्रेमी को बहुत कष्ट है।
(ii) अनुप्रास, श्लेष और यमक अलंकारों का प्रयोग हुआ है।
(iii) विरह-वेदना के कारण पद्य भावात्मक है।
(iv) सवैया छन्द है।
(v) भाव-साम्य— वो आँख चुराके जाने वाले,
हम भी थे कभी तेरी नज़र में। —*'जलील' मानकपुरी*

क्यौं हँसि हेरि हर्‌यो हियरा, अरु क्यों हित कै चित चाह बढ़ाई।
काहे कौ बोले सुधासने बैननि, नैननि मैन सलाक चढ़ाई।
सो सुधि मो हिय में घनआनँद सालति क्यों हूँ कढ़ै न कढ़ाई।
मीत सुजान अनीति की पाटी इते पै न जानियै कौन पढ़ाई ।।4।।

शब्दार्थ— हेरि = खोजकर। **हियरा** = हृदय। **हित कै** = हित करके। **बैननि** = वाणी, बातें। **सुधि** = याद। **सालति** = टीसती है। **कढ़ै** = निकले। **कढ़ाई** = निकाले। **सलाक** = सुरमा लगाने की सलाई।

प्रसंग— आलोच्य पद्यांश में कवि प्रिय के पहले के प्रेम-भरे व्यवहार की याद करके भावाकुल हो जाता है। वह प्रिय को उसके असमान और उपेक्षापूर्ण रवैये के लिए उलाहना देता हुआ कहता है—

व्याख्या— प्रिय सुजान ! तुमने अपनी दिलकश मुस्कान से मेरे मन पर अपना साम्राज्य स्थापित कर लिया है। आखिर तुमने ऐसा क्यों किया। इतना ही नहीं, तुमने अपने सुन्दर रूप की झलक दिखाकर मेरे नेत्रों का हित किया और मेरे मन में अपनी प्रीति का अंकुर उगा दिया। तुमने अमृतमयी वाणी से प्यार भरी बातें क्यों कीं और अपनी आँखों में काम-रूपी सलाई से मद-रूपी सुरमा लगाकर मेरी ओर क्यों देखा? कवि पुनः प्रिय (सुजान) को सम्बोधित

व्याख्या— हे प्रियतम सुजान ! आप परम प्रबुद्ध और ज्ञानी हैं। पहले तो आपने मेरे ऊपर कृपा-वारि-वृष्टि की अर्थात् अपने अतिशय प्रेम के साथ मुझे अपना बना लिया और बाद में क्रोधित होकर आप मुझसे नाता (सम्बन्ध) तोड़ रहे हैं। कहने का भाव यह है कि प्रियतम सुजान एक बार (पहली बार) तो प्रेम का प्राकट्य करते हुए मुझे अपनाते हैं और बाद में रुष्ट होकर त्याग देते हैं। जब मैं निराधार जीवन की प्रवाहमयी धारा में डूब रहा था, तब तुम्हीं ने अपने प्रेम का सहारा देकर मुझे उबारा। अब आप दुबारा मुझे वियोग की धारा में पुनः मत बोरिए। एक बार आपने मुझे सहृदयतापूर्वक अपनाया और अब दुबारा हृदयहीनता का व्यवहार कर रहे हैं, ऐसा न कीजिए। हे आनन्द की वर्षा करने वाले प्रिय ! मैं आप ही का चातक (प्रेमी) हूँ। आप ही ने मुझे अपने गुणों की रस्सी से बाँधकर अपने वश में किया है। हे प्रियतम, अब आप मेरे ऊपर से अपनी मोह-ममता का परित्याग न कीजिए। आपने पहले तो प्रेम-रस पिलाकर मुझे जीवन प्रदान किया और अब विश्वासघात में उस जीवन में विष न घोलिए।

विशेष— (i) इस पद में कवि ने संयोग और वियोग दोनों क्षणों का चित्र प्रस्तुत किया है।

(ii) यमक, श्लेष, अनुप्रास अलंकार इस छन्द में दर्शनीय हैं।

(iii) विप्रलम्भ शृंगार है।

(iv) 'गहि बाँह न बोरियै जू', 'बिसास मैं यौं विष घोरियै जू' में मुहावरेदार भाषा का प्रयोग हुआ है।

(v) 'घन आनँद ..... मोहन छोरियै जू' के संदर्भ में घनानन्द ने अन्यत्र भी अपने को चातक तथा प्रियतम को 'घनआनन्द रस-ऐन' कहा है। यथा—

घन आनँद रसऐन, कहौ कृपानिधि कौन हित।
मरत पपीहा-नैन, दरसौ पै बरसौ नहीं।।

(vi) कहते हैं— किसी का दिल नहीं तोड़ना चाहिए— एक बार जोड़कर तो नहीं ही तोड़ना चाहिए, क्योंकि दिल में तो खुदा रहता है—

बुतख़ाना तोड़ डालिए, मस्जिद को ढाइए,
दिल को न तोड़िए, ये खुदा का मुक़ाम है।

—*ख्वाजा हैदर अली 'आतिश'*

आस ही अकास-मधि अवधि-गुनै बढ़ाय,
चोपनि चढ़ाय दीनौ, कीनौ खेल सौ यहै।
निपट कठोर ये हो ऐंचत न आप ओर,
लाड़िले सुजान सों दुहेली दसा को कहै।
अचिरजमई मोहिं भई घनआनँद यौं,
हाथ साथ लाग्यो, पै समीप न कहूँ लहै।
बिरह समीर की झकोरनि अधीर नेह,
नीर भीज्यौ जीव, तऊ गुड़ी लौ उड़्यौ रहै॥ 7॥

शब्दार्थ— **मंधि** - मध्य, बीच में। **अवधि-गुनै** - समय-सीमा-रूपी रस्सी या डोर। **चोपनि** - उत्साह में। **निपट** - बिल्कुल। **लाड़िले** - दुलरुआ। **दुहेली** - दुखभरी। **अचिरजमई** - आश्चर्य से ओत-प्रोत। **लहै** - प्राप्त होना। **तऊ** - तो भी। **गुड़ी लौं** - पतंग की भाँति।

प्रसंग— प्रस्तुत छन्द में कवि अपने प्रिय सुजान के वियोग की पीड़ा से आकुल-व्याकुल होकर अपना दु:ख पतंग के रूपक के माध्यम से व्यक्त करता हुआ कहता है—

व्याख्या— प्रिय सुजान ! तुमसे दूर रहकर, तुम्हारा वियोग सहकर मेरा जीवन आकाश में उड़ती हुई पतंग के समान हो गया है। जैसे पतंग की डोर का एक सिरा तो उड़ाने वाले के हाथ में रहता है, पर पतंग उस उड़ाने वाले से दूर-बहुत-दूर होती है, वही दशा इस समय मेरी है। इस समय मेरे जीवन की पतंग आशारूपी आकाश के बीच, अवधि रूपी डोर के सहारे तुम्हारे उड़ाने के उत्साह से प्रेरित होकर उड़ रही है। तुम जाने-अनजाने मेरे साथ एक खेल ही तो खेल रही हो। तुम्हारे आने की समय-सीमा बार-बार बढ़ती जाती है और एक मैं हूँ जो उसी दिन की प्रतीक्षा में जीवित हूँ। तुम भी कहीं-न-कहीं उसी पतंग उड़ाने वाले के समान हो, जो पतंग की चिन्ता न करते हुए बड़े ही उत्साह के साथ उसे सुदूर आकाश में पहुँचाकर ही दम लेता है। पतंग का क्या होगा— इससे उड़ाने वाले का क्या प्रयोजन ? ! तुम भी पतंग की ही तरह मेरे जीवन से खिलवाड़ कर रही हो। तुम इतनी अधिक पत्थर दिल हो गयी हो कि मेरे जीवन की डोर की रंचमात्र भी अपनी ओर नहीं खींच रही हो। मैं तुम्हारे पास आऊँगी तो कैसे ? ! मेरे और तुम्हारे बीच निरन्तर बढ़ती दूरी मेरी व्याकुलता बढ़ा रही है। मेरा दु:ख तुम्हें कौन बताये। कितना बड़ा आश्चर्य है कि डोर के माध्यम से मैं तुमसे निरन्तर जुड़ा रहकर भी तुमसे कितनी दूर हूँ। तुम्हें उस दूरी का इलहाम भी है ? ! जिस प्रकार तेज हवा के झोंके पतंग के जीवन को खतरे में डाल देते हैं, उसी प्रकार विरह के तेज़ झोंके मेरा जीवन-दीप बुझाने को आतुर हैं। मेरा मन अधीर हो गया है। प्रेमाश्रुओं से भीगकर भी मेरा मन पतंग के समान उड़ता रहता है। जहाँ पतंग पानी से भीगकर नहीं उड़ पाती, वहीं इसके विपरीत मेरा मन प्रेम के जल (आँसुओं) से भीगकर भी सदा आशा रूपी आकाश में उड़ता रहता है।

विशेष— (i) रूपक, स्वभावोक्ति, अनुप्रास एवं विरोधाभास अलंकारों का प्रयोग कवि--कथ्य को सम्प्रेषणीय और प्रभावी बनाने में सहायक है।

(ii) भावानुकूल, मुहावरेदार भाषा का प्रयोग।

(iii) कल्पना में नवलता द्रष्टव्य है।

(iv) प्रेम में 'दूर रहकर भी पास होना' अभूतपूर्व स्थिति है। यह सिर्फ और सिर्फ प्रेम में सम्भव है।

किसी के दिल में कोई यूँ भी न समा जाये
कि याद आये वह तो आँख छलछला जाये
तू जबसे दूर है ज्यादा करीब है मेरे
ये ऐसा क्यों है कोई आके तो बता जाये।।

घनआनँद जीवनमूल सुजान की कौंधनहूँ न कहूँ दरसैं।
सु न जानियै धौं कित छाय रहे दृग-चातिग-प्रान तपे तरसैं।
बिन पावस तौ इन ध्यावस हो न, सु क्यों-करि ये अब सो परसैं।
बदरा बरसैं रितु में घिरिकै नित ही अँखियाँ उघरी बरसैं।। 8।।

शब्दार्थ— कौंध-बिजली की चमक। दृग-चातक-नयनरूपी चातक। ध्यावस-धैर्य। उघरी-खुली हुई।

प्रसंग—प्रिय सुजान के वियोग में कविवर घनानन्द के नेत्रों से आँसुओं की झड़ी लगी है। अपने सुजान के वियोग में राधा की भी यही दशा है। छन्द में उभयपक्षीय भाव का निर्वाह हुआ है।

व्याख्या— छन्द में तीन भाव एक साथ चल रहे हैं। संसार को जीवन प्रदान करने वाले घनानन्द के बादल कहीं दिखायी नहीं देते। उनकी कौंध तक नहीं चमकती। राधा के प्रिय सुजान की एक झलक तक उन्हें नहीं दिखायी देती। घनानन्द को अपनी प्रिया सुजान की कहीं तनिक भी झलक नहीं दिखायी देती। जैसे बादल संसार के जीवन का मूल हैं, उसी प्रकार राधा के जीवन मूल कृष्ण हैं और घनानन्द की जीवन-मूल सुजान प्रिया है। कवि कहता है कि न जाने वे प्रिय कहाँ चले गये हैं, किसके घर छा गये हैं कि मेरे नेत्र चातक पक्षी की भाँति प्राणों को तपा रहे हैं। मेरे इन चातक नेत्रों को बिना प्रिय-दर्शन के धैर्य नहीं होता। पता नहीं ये किस प्रकार उन्हें प्राप्त करेंगे। बादल तो अपनी ऋतु आने पर, वर्षा ऋतु आने पर घिरकर बरसते हैं, अन्य ऋतुओं में नहीं बरसते, किन्तु ये मेरे नयन तो प्रत्येक ऋतु में नित्य खुले बरसते हैं। खुले नयनों से रुदन करना बड़ा कष्टकारी होता है। यह एक विचित्रता है कि बादल हमेशा घिरकर बरसते हैं और मेरे ये नयन उघर कर बरसते हैं, कैसा विरोधाभास है!

विशेष— (i) छन्द में भाव-प्रभविष्णुता तथा उक्ति में वैचित्र्य स्पष्ट परिलक्षित है।
(ii) विरोधाभास, श्लेष, व्यतिरेक अलंकार दर्शनीय हैं।
(iii) ब्रजभाषा का प्रयोग हुआ है।
(iv) कवित्त छन्द का प्रयोग है।
(v) सूर की गोपियाँ भी कृष्ण के वियोग में कुछ ऐसी ही बात कहती हैं—

निसि दिन बरसत नैन हमारे।
सदा रहत पावस ऋतु हम पर जब से स्याम सिधारे।

(vi) सिराज औरंगाबादी का ये शेर भी इसी भाव-भूमि से अनुप्राणित लगता है—

मेरी आँखों के दोनों पट खुले हैं इन्तज़ारी में,
नहाना मत करो गर तुमको आना है तो आ जाओ।

अकुलानि के पानि पर्‌यौ दिन राति, सु ज्यौं छिनकौ न कहूँ बहरै।
फिरिबोई करै चित चेटक-चाक लौं, धीरज को ठिकु क्यौं ठहरै।
भए कागद-नाव उपाय सबै, 'घनआनँद' नेह-नदी-गहरै।
बिन जान सजीवन कौन हरै, सजनी बिरहा-बिष की लहरै॥ 9॥

शब्दार्थ— अकुलानि - व्याकुलता के। पानि - हाथ। छिनकौ - क्षण भर के लिए भी। बहरै - विश्राम पाना, बहलना। चेटक - (1) परिचर, सेवक (2) इन्द्रजाल या जादू। ठिकु - आश्रय, ठिकाना। नेह - प्रेम। गहरै - (1) गहरी, (2) उमड़ती हुई, वेगवती।

प्रसंग— यहाँ विरह-विदग्ध प्रेमी-मन प्रियदर्शन को ही अपने विरह-पीड़ित मन का एकमात्र और सर्वोत्तम उपचार बताते हुए कहता है—

व्याख्या— प्रिय से दूर रहकर मेरा मन अहर्निश व्याकुलता के हाथों पीड़ित होता रहता है। उसे क्षण भर के लिए भी कहीं 'चैन नहीं', 'विश्राम नहीं'! मैं विरह की अथाह जल-राशि में पड़कर ऊभ-चूभ कर रहा हूँ। अब किसी भी प्रकार मेरा निस्तार नहीं! मैं एक भी पल के लिए उस अथाह वियोग-सागर से निकल नहीं पाता। और-तो-और मेरा मन भी जैसे उसी विरह का सेवक बन गया हो। मेरा मन पलभर के लिए भी वियोग की दशा से विमुख नहीं हो पाता। वह विरह का चाकर बना कुम्हार के चाक-जैसा, चकरघिन्नी बनकर प्रतिपल नाचता ही रहता है, जैसे कि वह इन्द्रजाल के वशीभूत हो। ऐसी स्थिति में धैर्य का भी कहीं अता-पता नहीं रहता। सबसे पहले वही साथ छोड़ देता है। प्रेम की नदी में स्नेहरूपी जल बढ़ जाने से जहाँ उसकी गहराई अबूझ हो गयी है, वहीं उसका वेग भी अचानक बहुत बढ़ गया है। जैसे तेज बहाव वाले जल में कागज की नाव पलभर भी नहीं टिकती, गलकर नष्ट हो जाती है, वही दशा मेरे विरह से बचने के उपायों की हो गयी है। कोई भी उपाय कारगर नहीं होता और न ही अब कोई रास्ता नजर आता है। अब तो विरहरूपी विष-लहरों की मारकता- प्रभावात्मकता कम करने का एक ही साधन है— प्रिय सुजानरूपी संजीवनी बूटी का सान्निध्य।

विशेष— (i) पूर्णोपमा, परम्परित रूपक, अनुप्रास, स्वभावोक्ति और मुद्रालंकारों का सुन्दर प्रयोग।

(ii) भावानुकूल, प्रवाहमयी भाषा।

(iii) कविवर बिहारी ने भी ऐसी अवस्था को ही परिलक्षित करके कहा होगा—

मैं लखि नारी-ज्ञानु, करि राखेहुँ निरधारु यह।
वहई रोगु निदानु, वहइ वैदु औषधु वहइ।।

हीन भए जल मीन अधीन कहा कछु मो अकुलानि समानै।
नीर सनेही को लाय कलंक निरास ह्वै कायर त्यागत प्रानै।
प्रीति की रीति सु क्यौं समुझै जड़ मीत के पानि परे को प्रमानै।
या मन की जु दसा घनआनंद जीव की जीवनि जान ही जानै।। 10।।

शब्दार्थ— हीन भए- समाप्त हो जाने पर। जलमीन- जल में निवास करने वाली मछली। मो-मेरी। अकुलानि- व्याकुलता। समानै- समानता कर पाना। नीर सनेही- प्रेमी जल को। लाय कलंक- कलंक लगाकर। कायर-डरने वाला, डरपोक। प्रीति की रीति- प्रेम की परम्परा, प्रेम करने का ढंग। जड़-मूर्ख। मीत-मित्र। पानि- हाथों में। को प्रमानै- कौन प्रमाणित कर सकता है। या- इस । जीव की जीवनि- प्राणों को धारण करने वाली, प्राणों को इस शरीर में प्राण-रूप प्रदान करने वाली। जान- प्रेयसी सुजान।

अति सूधो सनेह को मारग है, जहँ नैकु सयानप बाँक नहीं।
तहाँ साँचे चलैं तजि आपुनपौ झझकैं कपटी जे निसाँक नहीं।।
घन आनँद प्यारे सुजान सुनौ इहाँ एक तें दूसरो आँक नहीं।
तुम कौन धौं पाटी पढ़े हौ लला मन लेहु पै देहु छटाँक नहीं।। 11।।

शब्दार्थ—सूधो = सीधा, सरल। नेकु = तनिक भी। सयानप = चतुराई। निसाँक = नि:शंक। आँक = अंक। छटाँक= (भार की निम्नतम इकाई) छटा + अंक = शरीर की छटा।

प्रसंग—प्रस्तुत छन्द में प्रेम-मार्ग की सरलता-सहजता का मार्मिक एवं हृदयहारी चित्रण केया गया है।

व्याख्या—कवि कहता है कि हे प्रिय सुजान! प्रेम का मार्ग अत्यन्त सीधा एवं सरल है। इसमें चतुराई के लिए तनिक भी स्थान नहीं होता। प्रेम के इस सरल-ऋजु मार्ग के राही वही लोग बन सकते हैं, जिन्होंने अपनत्व का त्याग कर दिया हो। सर्वसाधारण के लिए यह मार्ग सुलभ नहीं होता। कपटी एवं शंकालु व्यक्ति इस मार्ग पर चलते हुए झिझकते हैं। प्रेम के इस पवित्र मार्ग में एक के अतिरिक्त दूसरे अंक की गणना नहीं होती अर्थात् यहाँ एक ही अंक होता है, दूसरे के मन पर सहजतापूर्वक आधिपत्य स्थापित कर लेते हो, किन्तु अपना स्नेह तनिक भी नहीं देते हो।

विशेष—(i) अनुप्रास एवं श्लेष की छटा दर्शनीय है।
(ii) सुन्दर पद-मैत्री की योजना की गयी है।
(iii) अन्तिम पंक्ति में परिवृत्त अलंकार है।
(iv) समानान्तर पंक्ति—
(अ) काहे को रोकत मारग सूधो।
सुनहु मधुप! निर्गुन कंटक तैं राजपंथ क्यों रूधो।।
(ब) प्रेम गली अति साँकरी, तामें द्वै न समाहिं।
(स) जख्मों को वे आँचल की हवा क्यों नहीं देते
जिससे वो हरे हों वो दवा क्यों नहीं देते।
(v) सवैया छन्द का प्रयोग हुआ है।
(vi) प्रेम की सहजता-सरलता एवं पवित्रता का हृदयस्पर्शी चित्रण हुआ है। ठीक ही कहा गया है कि—"प्रेम पवित्र पूजा की वह शृंखला है, जिस पर साधारण लोग नहीं चढ़ सकते।"

पूरन प्रेम को मंत्र महापन,
जा मधि सोधि सुधारि है लेख्यौ।
ताही के चारु चरित्र बिचित्रनि,
यौं पचि कै रचि राखि बिसेख्यौ।
ऐसो हियो हित पत्र पवित्र जु,
आन कथा न कहूँ अवरेख्यौ।

सो घनआनँद जान अजान लौं,
टूक कियौ पर बाँचि न देख्यौ।। 12।।

शब्दार्थ—**पूरन** = परिपूर्ण। **महापन** = महान् संकल्प, प्रतिज्ञा। **जामधि** = जिसके भीतर। **सोधि** = शुद्ध करके। **सुधारि** = सजाकर। **है लेख्यौ** = लिखा है। **ताही के** = उस प्रियतम के। **चारु** = सुन्दर। **पचिकै** = कष्ट उठाकर। **रचि राखि बिसेख्यौ** = विशेष प्रकार से रचा है **हियो-हिय-पत्र** = हृदय रूपी प्रेम-पत्र। **आन** = दूसरी। **अवरेख्यौ** = लिखा है, अंकित किया है। **जान** = जानकार, ज्ञानी। **अजान लौं** = अज्ञानी के समान होकर। **टूक-कियौ** = टुकड़े-टुकड़े कर डाला।

प्रसंग—विरहिणी का प्रियतम प्रवासी है। वह स्वयं से कह रही है कि उस निष्ठुर प्रियतम के पास पत्र क्या भेजूँ, जिसने मेरे द्वारा प्रेषित हृदय-रूपी प्रेम-पत्र को बिना पढ़े ही फाड़ डाला।

व्याख्या—विरहिणी नायिका कहती है—मैंने अपने हृदय-रूपी प्रेम-पत्र में प्रेम के मन्त्र और उसकी प्रतिज्ञा को अत्यन्त सोच-विचार कर सुन्दर ढंग से लिखा था। उसमें मैंने प्रिय के सुन्दर एवं विचित्र चरित्र को विशेष परिश्रम से रचकर सजाया था। मेरा हृदय-प्रेम-पत्र इतना पवित्र था कि उसमें प्रिय के अतिरिक्त मेरे पवित्र हृदय पर किसी अन्य की कामना की छाया भी नहीं पड़ी। ऐसा हृदय का प्रेम-पत्र मैंने प्रिय को प्रेषित किया (इस आशा के साथ कि प्रिय उसे स्वीकार कर लेगा)। किन्तु उस पत्र को पढ़ना तो दूर, उसने जानते हुए भी अनजान की भाँति टुकड़े-टुकड़े करके फेंक दिया। तात्पर्य यह है कि हे प्रिय! तुम यदि एक बार भी मुझे समझने की चेष्टा करते तो तुम्हें इस बात की जानकारी हो जाती, कि मैं तुमसे कितना प्रेम करती हूँ। तब तुम निश्चय ही इस प्रेम भरे हृदय को न तोड़ते। हृदय-रूपी प्रेम-पत्र को बिना पढ़े ही फाड़कर तुमने अच्छा काम नहीं किया।

विशेष—(i) सम्पूर्ण छन्द में विरहिणी का आत्म-निवेदन देखने लायक है।
(ii) 'जान अजान' में परिकरांकुर अलंकार और 'अजान लौं' में उपमा अलंकार है।
(iii) पद-मैत्री और मुहावरेदार भाषा का मणिकांचन संयोग हुआ है।
(iv) सवैया छन्द का प्रयोग हुआ है।

परकाजहिं देह को धारि फिरौ परजन्य जथारथ ह्वै दरसौ।
निधि-नीर सुधा के समान करौ सबही विधि सज्जनता सरसौ।
घनआनँद जीवन-दायक हौ कछू मेरियौ पीर हिये परसौ।
कबहूँ वा बिसासी सुजान के आँगन मो अँसुवानहिं लै बरसौ।। 13।।

शब्दार्थ— **परकाजहिं** = दूसरों के कार्य के लिए, परोपकार-हेतु। **धारि** = धारण करके। **परजन्य** = जो अन्यों के लिए उत्पन्न हुआ हो, बादल। **जथारह** = यथार्थ में। **सरसौ** = करते हो। **दरसौ** = दिखायी देते हो। **मेरियो** = मेरी भी। **बिसासी** = विश्वासघाती। **परसौ** = स्पर्श करो, छुओ, अनुभव करो।